Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-2, September-2018

रमेशचन्द्र शाह के कथा साहित्य में परिवर्तित जीवन मूल्य

डॉ0 मृदुल जोशी[1]
पूजा पुण्डीर[2]
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)[1]
शोध छात्रा, हिन्दी, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)[2]

Abstract-जो आज है वह अवश्य ही परिवर्तित होगा। यह एक शाश्वत सत्य है। संसार की प्रत्येक वस्तु के साथ–साथ मनुष्य के विचारों में भी समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। यह अटल सत्य है कि जो आज है वह कल नहीं रहेगा तब मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि परिवर्तन ही संसार का नियम है। पुरातन मूल्यों के स्थान पर जब मनुष्य नवीन मूल्य निर्धारित करता है तो वे ही परिवर्तित जीवन मूल्य कहलाते हैं। मूल्यों का परिवर्तन करने के लिये मनुष्य पूर्णरूपेण स्वतंत्र है।

मनुष्य को मूल्यों को चयन स्वयं करने की स्वतंत्रता है फिर भी वह अनेक बार अपने परिवार व समाज पर ही निर्भर रहता है। जो मूल्य परिवार में पहले से स्थापित हैं वह उन्हें ही पदचिन्ह मानकर चलने लगता है। मानवीय मूल्यों को परिवर्तित करने के लिये दृढ़ इच्छाशक्ति व बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है। मनुष्य की विकसित बौद्धिक क्षमता ही मूल्यों का परिवर्तन करती है।

'रमेशचन्द्र शाह' ने भी अपने कथा साहित्य में परिवर्तित मूल्यों को अत्यन्त ही सजगता व कुशलता के साथ दिखाया है। उनके लिखने के ढंग में जो नयापन है वही उनके मूल्यों में दिखाई देता है। इस संदर्भ में उनके गोबर गणेश, किस्सागुलाम, सफेद परदे पर, कम्बख्त इस मोड़ पर, विनायक आदि उपन्यास तथा कहानियों में अयोध्या काण्ड, मकर– संक्रान्ति, उत्तरकाण्ड, मानपत्र, गाँठ, थियेटर आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि परिवर्तन ही संसार का नियम है। जो आज है वह अवश्य ही परिवर्तित होगा। यह एक शाश्वत सत्य है। संसार की प्रत्येक वस्तु के साथ–साथ मनुष्य के विचारों में भी समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। यह अटल सत्य है कि जो आज है वह कल नहीं रहेगा तब मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। पुरातन मूल्यों के स्थान पर जब मनुष्य नवीन मूल्य निर्धारित करता है तो वे ही परिवर्तित जीवन मूल्य कहलाते हैं। मूल्यों का परिवर्तन करने के लिये मनुष्य पूर्णरूपेण स्वतंत्र है।

सार्त्र ने मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्र घोषित करते हुए मूल्य परिवर्तन का अधिकार मनुष्य को ही दिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है – ''तुम स्वतंत्र हो अतः स्वयं चुनाव करो, स्वयं आविष्कार करो, निर्माण करो। सामान्य नैतिकता का कोई भी नियम तुमको यह नहीं बता सकता कि तुमको क्या करना चाहिये। संसार में तुमको कोई भी ऐसा अधिकृत नियम दिखाई नहीं पड़ेगा जो इस बात के लिये बाध्य करे कि अमुक चयन ही उपयुक्त है।''[1]

डॉ0 धर्मवीर भारती ने भी कहा है कि ''जैसे परिवर्तन सृष्टि का नियम है उसी प्रकार नए युग में नए मूल्यों का निर्माण जरूरी है। नए मूल्य युग की चेतना का परिणाम होते हैं। वैदिक काल एवं मध्यकाल की आध्यात्मिक चेतना
के स्थान पर आज के युग में मानवतावादी चेतना का उदय हुआ है। आज के युग में ईश्वर के

स्थान पर मानव को अधिक महत्त्व दिया गया है।''[2]

मनुष्य को मूल्यों को चयन स्वयं करने की स्वतंत्रता है फिर भी वह अनेक बार अपने परिवार व समाज पर ही निर्भर रहता है। जो मूल्य परिवार में पहले से स्थापित हैं वह उन्हें ही पदचिन्ह मानकर चलने लगता है। मानवीय मूल्यों को परिवर्तित करने के लिये दृढ़ इच्छाशक्ति व बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है। जैसा कि डॉ0 बीना जैन ने भी कहा – ''मनुष्य का जीवन समाज और विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से घिरा होता है। समाज, आचार–विचार, धर्म–नीति, चिन्तन, भाषा की एक पूरी परम्परा धारण किये होता है। समाज और परिस्थितियाँ मनुष्य की मनोभूमि का निरंतर निर्माण करती चलती रहती हैं। परिवर्तन ही जीवन है और जीवन संसार का मूल है तथा इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतू ज्ञान का उदय होता है। यह ज्ञान ही समाज को परिवर्तित करता है और मनुष्य को भी।''[3]

स्पष्ट है कि मनुष्य की विकसित बौद्धिक क्षमता ही मूल्यों का परिवर्तन करती है। ठीक इसी प्रकार 'रमेशचन्द्र शाह' ने भी अपने कथा साहित्य में परिवर्तित मूल्यों को अत्यन्त ही सजगता व कुशलता के साथ दिखाया है। उनके लिखने के ढंग में जो नयापन है वही उनके मूल्यों में दिखाई देता है। इस संदर्भ में उनके गोबर गणेश, किस्सागुलाम, सफेद परदे पर, कम्बख्त इस मोड़ पर, विनायक आदि उपन्यास तथा कहानियों में अयोध्या काण्ड, मकर–संक्रान्ति, उत्तरकाण्ड, मानपत्र, गाँठ, थियेटर आदि उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास 'गोबर गणेश' में रमेशचन्द्र शाह ने बदलते जीवन मूल्यों को बड़े ही मनोयोग के साथ उकेरा है। समय की गति ही कुछ इस प्रकार चलती है कि समय परिवर्तन होता है, समय परिवर्तन के साथ ही समाज में परिवर्तन आता है। प्रभाववश व्यक्तियों के जीवन मूल्य भी परिवर्तित होने लगते हैं। उपन्यास में मुख्यपात्र विनायक व उसके परिवार की माली हालत ठीक नहीं है। प्रत्येक सदस्य अपने जीवन में संघर्षरत है। इसी संबंध में विनायक के मथुरकाका उसे बचपन की दुर्दशा बताते हुए कहते हैं कि ''तू अपनी माँ से पूछना, वो बताएगी तुझे। मैं तो उस वक्त बच्चा था, सिर्फ थप्पड़–लात खाने और दूसरों के बच्चे क्या खा रहे हैं, क्या पहन रहे हैं, इसी को ललचाई आँखों से ताकते रहने के लिये पैदा हुआ था। मेरे मन में जो भी कलख है, वह जिन्दगी भर नहीं धुलेगी। मैं इतना कमीना नहीं हूँ कि सगे भाई से डाह करूँ। मगर तू ही बता, इकन्नी महीना फीस पड़ती थी? इसी इकन्नी के पीछे, मेरे बाप ने मुझे लात मारके सीढ़ियों से गिरा दिया था। XXX मरते–मरते बच गया।''[4]

उस समय की मनः स्थिति साफ देखी जा सकती है। पुराने समय में घर की आर्थिक तंगी होने पर बच्चों को ऐसे ही पीटा जाता था आज के समय में बच्चों को इस तरह नहीं पीटा जाता। वर्तमान में माता पिता पढ़े–लिखे होने के कारण यह स्थिति उत्पन्न नहीं होती। फिर आगे वह कहते हैं कि ''फिर वो जमाना दूसरा था। गुणी आदमी की कदर थी। पैसे को साले को कौन पूछता था।''[5]

हमारे मूल्य और आदर्श अब परिवर्तित हो गये हैं। यह सत्य है कि पुराने समय में व्यक्ति के गुण देखे जाते थे। उन्हीं से उसका व्यक्तित्व निर्धारित होता था। वर्तमान में व्यक्ति स्वार्थवश हो गया है। इसलिये आर्थिक सम्पन्नता को महत्त्व दिया जाता है।

उपन्यास में विवाहोपरान्त सरोज को जब उसके प्रतिकूल स्थिति मिलती है तो वह एक बंधी बंधाई परम्परा से विद्रोह कर अपने पति को उसके कृत्यों पर थप्पड़ मार देती है और कहती है – ''मुझे अपने किए पर कोई पछतावा भी नहीं है। मेरी अन्तरात्मा ही जब नहीं धिक्कारती – मेरी अन्तरात्मा ही जब मुझे कहती है – सरोज! तूने जो किया बिल्कुल ठीक किया। तू अगर ये नहीं करती तो सरोज नहीं रह जाती, कुछ और जाती– तो फिर मुझे और किसी के कुछ भी कहने–सुनने की क्या परवाह हो सकती है?''[6]

पुराने समय में भारत में यह मान्यता प्रचलित थी कि पति चाहे जैसा भी हो, उसका चरित्र कैसा भी हो परन्तु वह परमेश्वर ही माना जाता है। सरोज ने इस मान्यता का पूरी तरह से विरोध कर खण्डन किया है।

'कम्बख्त इस मोड़ पर' उपन्यास में जब चरितनायक का पुत्र अपनी इच्छा से अपने लिये लड़की पंसद कर लेता तो पिता को यह बात भीतर ही भीतर कचोटती है। क्योंकि वह एक आधुनिक पिता की तरह संतान की हर सम्भव इच्छा को पूरी करना चाहते हैं। परन्तु वह उन्हें न बताकर अपनी माँ को बता देता है तो वह छोटे बेटे से कहते हैं ''मेरे प्रगतिशील विचारों पर तुम्हारे भाई को भरोसा नहीं था और अपनी माँ पर था जोकि इन मामलों में मेरी माँ की तरह चुपचाप आँसू बहाने और खाना पीना छोड़ देने की बजाए चिल्ला चोट मचा देती।''[7]

अगर उनका पुत्र अपने पिता से बता देता ते वे एक उन्नत बौद्धिक वैचारिक क्षमता वाले व्यक्ति की तरह उनकी बात को महत्त्व देते। आज के समय में भी यह कोई बड़ी बात नहीं है कि बच्चे अपने जीवन साथी का चुनाव स्वयं अपनी इच्छा से करें। यह निश्चय ही पुरातन मूल्यों में नवीनता आई है। जिससे चरितनायक भी पूर्णरूपेण सहमत हैं।

एक स्वतंत्र व उन्नत विचारों वाला व्यक्ति अपनी संतान को अपनी बात व विचार रखने का पूरा अवकाश देता है। वह उन्हें इस प्रकार से मूल्यों व संस्कारों से परिपोषित करते हैं कि वे सही–ग़लत, का स्वयं निर्णय कर सकने में सक्षम हों। ठीक इसी प्रकार से चरित नायक भी कहता है कि ''बड़ो के मुँह लगना– यहाँ तक कि उनसे ऊँची आवाज में बोलना तक हमारे यहाँ उन दिनों सरासर बेअदबी समझी जाती थी। यह सही या था गलत मैं इस बहस में नहीं पड़ूँगा। XXX अब यों तो अच्छा भी लगता ही होगा मुझे तुम्हारा यह वाक् –चातुर्य। आखिर, तुम्हें इस राह पर चलने की प्रेरणा किसने दी–मैंने ही नहीं तो? मैं पछता नहीं रहा हूँ। मुझे गर्व है तुम पर।''[8]

आज के समय में बच्चों को अपनी बात रखने का पूरा अवकाश दिया जाता है जबकि पिछली पीढ़ियों में यही बात माता–पिता को नागवार गुजरती थी। समय परिवर्तन के साथ ही मूल्यों में भी परिवर्तन आया है।

उपन्यास 'सफेद परदे पर' में कथाकार के जिन सामाजिक विशेषताओं को वर्णित किया है उनमें अत्यन्त ही नयापन है। वृद्धावस्था की जिन समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है उसमें ही वृद्ध चरितनायक देवेश के परिवर्तित मूल्यों को भी कुशलतापूर्वक उकेरा है। वृद्ध बेटे–बहू से अलग फ्लैट में रहने का निर्णय करता है तो इसलिये नहीं कि उसे प्रताड़ित किया जा रहा था बल्कि स्वेच्छा से वह अलग रहने जाते हैं। वहां पर भी वह अपनी आज्ञाकारी बहू का आत्मालाप ही करते रहते है। ''ऐसी आज्ञाकारी बहू इस जमाने में किसी ने देखी है?''[9]

सामाजिक दृष्टि से पिता का अलग रहना यह आरोप बेटे–बहू पर ही लगाया जाता है। यह हमारे पुरातन मूल्यों में व्याप्त है कि बेटे बहु के प्रताड़ित करने से ही माता–पिता अलग रहने का निर्णय करते है। उपन्यास में बेटे बहु को यही चिन्ता परेशान करती है कि ''लोग क्या कहेगें? XXX कुछ तो झगड़ा टंटा हुआ ही होगा, जिससे तंग आके बूढ़ा अकेले मरने चल दिया। बेटे से ज्यादा डर बहू को कि लड़के को तो कोई क्या कहेगा? मुझी पे तोहमत लगेगी कि ससुर बोझ बना जा रहा था, इसीलिए छुट्टी कर दी उसकी इसी ने।''[10]

सामाजिक दृष्टि से बेटे विवेक और बहू पुष्पा की चिन्ता उचित ही है। पुरातन मूल्यों के अनुसार ऐसा ही माना जाता है। परन्तु आज मूल्य बदल रहे हैं। वृद्ध देवेश को किसी की परवाह नहीं है कि कोई क्या कहेगा अपितु वह स्वयं ही कहते हैं कि – ''ऐसा लड़का और ऐसी बहू बड़े भाग से ही नसीब हेाते हैं– हज़ारों की संख्या में एकाध घर ऐसा मिले तो मिले।''[11]

उपन्यास में चरितनायक को मूल्यों व आदर्शों के धनी व्यक्ति के रूप में दिखाया है। साथ ही उनके पुत्र, पुत्रवधू व बेटी को भी। जब उनके बेटे को उनके मित्र के आने की सूचना मिलती है तो वह पिता को फोन पर सूचना देता है कि ''पापा वो आपके दोस्त हैं ना लखनऊ वाले, विनय मोहन जी, उनका फोन आया था वे परसों सुबह यहाँ पहुँच रहे हैं। मैं उनसे क्या कहूँ मेरी समझ में नहीं आया। यूँ ही कह दिया पापा अपने एक दोस्त के यहाँ गये हैं। शायद दो–एक घण्टे में लौटें।''[12]

रमेशचन्द्र शाह के अति प्रसिद्ध उपन्यास 'विनायक' में जब विनायक की महिला मित्र मार्गरेट का पत्र उसके घर के पते पर आ जाता है तो घर में खूब कोहराम मच जाता है। उसकी पत्नी मालती एक सजग पत्नी की तरह ही उस पर अपनी प्रतिक्रिया करती है। इस प्रकरण में घर में खूब झगड़े होते हैं तब स्थिति को संभालने के लिये विनायक का बेटा ही कहता है कि – ''पापा तुम भी अजीब हो। कुछ तो ख्याल रक्खा करो। आखिर तुम्हें वह चिठ्ठी घर के पते पर मंगाने की क्या जरूरत थी? क्यों सब जानते–बूझते भी आफ़त बुलाते हो?''[13]

इस पर विनायक चौंक जाता है। अपने पुत्र के मुँह से यह सुनकर। नई पीढ़ी में मूल्यों का परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। पुत्र पिता के समक्ष अपनी किसी भी बात को स्वच्छन्दता के साथ रख सकता है। जिसमें उन्हें बिल्कुल भी संकोच का अनुभव नहीं होता। मूल्य परिवर्तन की सशक्त अभिव्यक्ति है।

उपन्यास में जब विनायक की सहकर्मी शंकुतला अपने पति से सम्बंध विच्छेद कर लेती है तो वह एक मुक्तता का अनुभव करती है। वह कहती है – ''अब मैं मुक्त हूँ–खुलकर साँस ले सकती हूँ। मिस्टर दुबे से मुझे कोई शिकवा नहीं है। अपने ढंग से वे भी इस अनचाहे और बेमेल दाम्पत्य को भुगत ही रहे थे। अच्छा है– अब हम सहज भाव से मिल सकते हैं।''[14]

समय के साथ निश्चय ही दाम्पत्य जैसे रिश्तों में भी स्वच्छंदता दिखाई देती है अब वह समय नहीं रहा जब पति–पत्नी का संबंध सात जन्मों का माना जाता था। अब अगर दोनों में से कोई भी संतुष्ट नहीं है तो वह संबंध को ढोना पसंद नहीं करता अपितु संबंध विच्छेद कर लेता है। इसी प्रकार लेखक ने भी आज के सम्बन्धों को लेकर उम्दा अभिव्यक्ति दी है।

आज के समय में मूल्यों में इतना परिवर्तन आ चुका है कि दो विपरीत पृष्ठभूमियों के व्यक्ति भी एक साथ जीवन निर्वाह कर सकते हैं। जैसे–जैसे समाज शिक्षित हुआ है तो विचारों में भी परिवर्तन हुआ है। जिसके चलते ही यह सम्भव होने लगा है। अपने ऐसे ही दाम्पत्य को लेकर विनायक कहता है कि – ''मैं उस पर निर्भर हूँ पूरी तरह, उसके सिवा अन्य किसी स्त्री को मैं पत्नी के रूप में कल्पना ही नहीं कर सकता– ऐसा विश्वास उसके मन में उन चिठ्ठियों ने ही जगाया होगा और तभी उसने सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद– हमारी एक दूसरे से नितांत भिन्न और नितान्त बेमेल पृष्ठभूमियों के बावजूद मुझे ही वरण करने का निश्चय किया। इसमें संदेह नहीं।''[15]

विनायक ओर मालती ने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद सफल जीवन जिया है। जो इन दोनों की बौद्धिक क्षमता को दर्शाता है।

शाह जी की कहानियों में जो मूल्य परिवर्तन दिखाया गया है वह कहीं धर्म–परिवर्तन को लेकर है तो कहीं पारिवारिक स्तर पर है। 'जंगल में आग' कहानी संग्रह की 'अयोध्या काण्ड' कहानी में मुख्यपात्र भव्वा का बेटा धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन जाता है तो उसे इस पर कोई आपत्ति नहीं होती। अपितु उसे इस सम्बन्ध में किसी भी व्यक्ति से कुछ सुनना पसंद नहीं है। ''खबरदार लाला जो मेरे बच्चे को कुछ भी कहा। ईसाई हो गया तो तुम्हारा क्या लुट गया? जिनगी भर तमारा मैला ढोया। फिर भी कल नहीं पड़ी। समजते क्या हो तम? हरगिज नहीं ढोयेगा वो, कान खोल के सुन लो, भव्वा की औलाद है तो हरगिज नहीं ढोयेगा। मों भी नहीं देखेगा तमारा वो .....रक्खे रहो धर्म अपना .....''[16]

मूल्यों में परिवर्तन के कारण ही भव्वा को इतना बड़ा परिवर्तन भी नहीं अखरता। वह उसे सहज ही स्वीकार्य है। यहां लेखक का यह दिखाने का प्रयास भी है कि मूल्य परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। भव्वा व उसके बेटे का अपने जीवन से घोर संघर्ष ही उसे इतने बड़े परिवर्तन की ओर ले जाता है।

सामाजिक परिवेश में व्यक्ति कहाँ–कहाँ मूल्यों का परिवर्तन चाहता है यह 'उत्तरकाण्ड' कहानी में चरित नायक की अभिव्यक्ति द्वारा दिखाया गया है। पिता की मृत्यु के पश्चात् जब घर में धार्मिक कर्मकाण्ड किया जाता है तो वह इस सबको सिर्फ एक ढोंग बताता है। इस पर माँ उससे कहती है कि रीति–रिवाज़ निभाने व शान्ति के लिये यह सब करना पड़ता है। इस पर बिफर कर वह कहता है कि –

''मुझे तो इसमें शान्ति –वान्ति कुछ दिखाई नहीं देती। इतना शोरगुल, इतना धूम–धड़ाका! मुझे तो यह मृतात्मा का अपमान लगता है और मैं यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकता।''[17]

निश्चय ही नई पीढ़ी पुरातन मूल्यों में परिवर्तन की हिमायती है। वह हर चीज को तर्क की कसौटी पर कसकर देखती है। फिर सही–गलत का निर्णय करती है। कहानी में भी शाह जी ने यही दिखाने का प्रयास किया है चरितनायक इस कर्मकाण्ड का पूरा विरोध करता है। अपनी माँ से कहता है कि ''पचास तरह के टण्टे इन हत्यारे बामणों ने ऐसे ही लगा रखे हैं। तिस पर तुम्हारे जैसी औरतों ने इन्हें और भी सर पे चढ़ा रखा है। मरने वाला तो मर गया। जो जिन्दा बचे हैं वे वभी जिन्दा न रहे सकें। इसका पूरा बन्दोबस्त करके रखा है, धूर्तों ने .....''[18]

आज व्यक्ति जिस समाज में रह रहा है वहाँ वह सभी से अपने स्वार्थवश संबंधों को जीता है। यहाँ तक कि वह अपने सहोदर संबंधों को भी ताक पर रख देता है। इसी संग्रह की 'मकर संक्रान्ति' कहानी में इसी संदर्भ में एक ज्वलन्त उदाहरण है। जब दो भाइयों जयलाल (बड़ा), पिरमलाल (छोटा) में संबंधों में तनाव पैदा हो जाता है तो पिरमलाल अपने बड़े भाई जयलाल को दुकान से निकाल देता है। वह कहता है कि ''जाओ और अपना पेट खुद कमाओ। मेरे आसरे मत रहो। अपने मन की करनी है तो अपने पाँव पर खड़े होओ। टुकड़े खाओगे मेरे और चाहोगे बड़े भाई भी बने रहो। यह नहीं चलेगा।''[19]

यहाँ मूल्यों का भावनात्मक परिवर्तन दिखाया गया है। समय के साथ संबंधों में इतना बदलाव आ जाता है कि संबंधों की ऊष्मा व गरिमा ही खत्म हो जाती है।

'मान–पत्र' कहानी में भी पिता पुत्र के संबंधों को लेकर मूल्यों पर चर्चा हुई है। कहानी में सोहन चाचा ने अपने इकलौते पुत्र को पढ़ा–लिखाकर उसे आत्म निर्भर बना दिया है। बेटा बढ़िया नौकरी पा गया है। परन्तु सोहन चाचा को स्वावलम्बी होना बेहद पसंद है। उनका स्वावलम्बन ही उनके बेटे को अखरता है। वह चरितनायक से कहता है कि – ''इस उम्र में भी साग का टोकरा सिर पर उठाए भरे बाजार में फिरते हैं। लोग क्या सोचते होगे– आप ही बताइये। क्यों अपने साथ–साथ मेरी भी मिट्टी पलीद करते हैं? मैंने तो अब उधर जाना ही छोड़ दिया। क्या मुँह दिखाऊँ।''[20]

आज व्यक्ति के रहन–सहन के स्तर में बदलाव आया है। प्रत्येक संस्कारवान संतान अपने माता पिता को भी बढ़िया ढंग से रखना चाहती है। पहले इन चीजों से सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु मूल्य बदलने के साथ–साथ रहन–सहन के स्तर में भी पर्याप्त अन्तर आया है। नये और पुराने मूल्यों में अन्तर स्पष्ट ही देखा जा सकता है।

आज अभिभावक अपनी संतान के लिये पहले से कहीं अधिक सतर्क हैं। वह उन्हें उनके हर क्षेत्र में अपने मूल्यों व आदर्शों को थोपना नहीं चाहते हैं। वह चाहे उनका कैरियर क्षेत्र हो या फिर उनकी व्यक्तिगत जिंदगी। पुराने समय में मूल्यों को दबाववश लादा जाता था, परन्तु समय बदलने के साथ व्यक्ति की वैचारिकता भी बदली है। ऐसा ही एक उदाहरण हम 'गाँठ'

कहानी में देखते हैं। जिसमें पिता अपनी बेटी अपर्णा को करियर चुनने की पूरी स्वतंत्रता देते हैं। वह चाहते हैं कि बेटी के मन में कोई गांठ न रहे। वह पूरे मन से जो करना चाहती है या कर सकती है करे। इसी संबंध में वे कहते हैं कि –

''आधा –अधूरा न इधर न उधर। आदमी को वही माध्यम चुनना चाहिये जिसमें उसकी प्रतिभा, उसकी संभावना पूरी तरह खुल सके, खिल सके।''[21]

कुछ वर्षों पहले तक यह देखने में आता था कि माता–पिता जो स्वयं नहीं बन पाते थे या कर नहीं पाते थे वही अधूरी इच्छा अपनी संतान के द्वारा पूरी होती देखने की लालसा रखते थे। वर्तमान में इस स्थिति में बहुत अन्तर आया है। अब वह बच्चों को अपनी पसंद से अपना क्षेत्र चुनने की पूरी स्वतत्रंता देते हैं।

इसी संदर्भ में अपर्णा के पिता का यह कथन दृष्टव्य है ''मैं उन पिताओं में नहीं हूँ जो अपनी संतान से अपनी महत्त्वाकाँक्षाएँ या कुँठाएँ ढुलवाते हैं। मैंने हमेशा यही चाहा और यही कोशिश की कि मेरे बच्चे अपना रास्ता खुद चुनें। पूरी तरह स्वाधीन मानसिकता बने उनकी।''[22]

यह मानसिकता एक उन्मुक्त व स्वछंद विचारों वाले व्यक्ति की ही हो सकती है। जो अपर्णा के पिता में हमें दिखाई देती है। लेखक ने एक सफल साहित्यकार की तरह हर छोटी बड़ी बात पर ध्यान दिया है जो रोज़मर्रा के जीवन में घटित होती है और जो पूर्णरूप से प्रभावशाली भी बन पड़ी है।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि शाह जी ने अपने कथा साहित्य में भरपूर परिवर्तित मूल्यों को स्थान दिया है। जो वर्तमान में घटित हो रहा है वही उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित है। सम्बंधों को लेकर जो गंभीरता बरती गयी है वह अवश्य ही सराहनीय है। लेखक का समाज को देखने का दृष्टिकोण विस्तृत है। आम व्यक्ति की सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोदशा व मनोव्यथा को आपने मुखर अभिव्यक्ति दी है। आज प्रत्येक व्यक्ति से किस प्रकार मानसिक अन्तर्द्वन्द्व व ऊहापोह की स्थिति से गुजर रहा है, यह बहुत ही सहज व साधारण भाषा शैली में आपने पाठकों तक पहुँचाया है। अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से आपने अपने काल परिवेश का परिचय भी सहृदय पाठकों को कराया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ज्याँ पाल सार्त्र, इग्जिस्टेन्शियलिज्म एण्ड ह्यूमैनिज़्म, संस्करण–1970, पृ0–38।
2. डॉ0 धर्मवीर भारती, मानवमूल्य और साहित्य, पृ0–9, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1960
3. डॉ0 बीना जैन, बदलते परिप्रेक्ष्य और हिन्दी उपन्यास (भूमिका भाग), संजय प्रकाशन, जे0एम0डी0 हाऊस अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली।
4. रमेशचन्द्र शाह, गोबर गणेश, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, 1–बी0 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002 पृ0–153, 154
5. वही पृ0–155
6. वही, पृ0–297
7. रमेशचन्द्र शाह, कम्बख्त इस मोड़ पर, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–40
8. वही, पृ.–67
9. रमेशचन्द्र शाह, सफेद परदे पर, किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली 110002–पृ. 7
10. वही, पृ0.–11
11. वही, पृ0–6
12. वही, पृ0–30

13. रमेशचन्द्र शाह, विनायक, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, 1–बी0 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002 पृ0–85
14. वही, पृ0–117
15. वही, पृ0–142
16. रमेशचन्द्र शाह, जंगल में आग (कहानी संग्रह), अयोध्याकाण्ड, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–79, 80
17. रमेशचन्द्र शाह, मुहल्ले का रावण (कहानी संग्रह), उत्तरकाण्ड, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–79, 80
18. वही, पृ0–79, मुहल्ले का रावण (कहानी संग्रह), उत्तरकाण्ड, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–79
19. रमेशचन्द्र शाह, मुहल्ले का रावण (कहानी संग्रह), मकर–संक्रान्ति, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृ0–102
20. रमेशचन्द्र शाह, मानपत्र, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर–334001, पृ0 24–25
21. रमेशचन्द्र शाह, थियेटर (कहानी संग्रह), गाँठ, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर पृ0–40
22. वही, पृ0–41

कुंजी–शब्द

1.	परिवर्तित	–	जिसमें परिवर्तन किया गया हो या हुआ हो।
2.	शाश्वत	–	जो सदा से चला आ रहा हो।
3.	पुरातन	–	पुराना।
4.	पूर्णरूपेण	–	पूर्णरूप से।
5.	आध्यात्मिक	–	परमात्मा और आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला।
6.	चेतना	–	बुद्धि, समझ।
7.	दृढ़	–	मजबूत।
8.	बौद्धिक	–	बुद्धि से सम्बन्धित।
9.	चिन्तन	–	सोचना या विचारना।
10.	डाह	–	जलन, कुढ़न।
11.	प्रतिकूल	–	जो अनुकूल न हो।
12.	प्रताड़ित	–	बुरा व्यवहार।
13.	स्वच्छंदता	–	अपनी इच्छानुसार आचरण करने वाला।
14.	गरिमा	–	महत्त्व, गौरव।
15.	उन्मुक्त	–	जो मुक्त हो।
16.	अन्तर्द्वन्द्व	–	आंतरिक संघर्ष।
17.	उहापोह	–	असमंजस।